इकाई 6 वैदिक राष्ट्र की अवधारणा और स्वरूप (अथर्ववेद - 11/9/17, 12/1/1-12, शुक्ल यजुर्वेद 22/22)

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 पृथिवी सूक्त (अथर्ववेदसंहिता 12/1/1-12)

6.3 वैदिक राष्ट्र के तत्त्व (शुक्ल यजुर्वेद 22/22)

6.4 राजा और प्रजा के कर्त्तव्य (अथर्ववेद 11/9/17-18)

6.5 सारांश

6.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें

6.7 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

6.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप -

- वैदिक वाङ्मय में राष्ट्र की अवधारणा को जानेंगे
- भारतीय ऋषि प्रज्ञा और कवि प्रतिभा को जानेंगे
- वेदों में राष्ट्रीय चेतना और समृद्ध राष्ट्र की कल्पना को जानेंगे
- वैदिक राष्ट्र के पाँच तत्त्वों को जानेंगे
- राजा और प्रजा के कर्त्तव्यों को जानेंगे
- वैदिक कालीन सांस्कृतिक जीवन को जानेंगे

6.1 प्रस्तावना

प्रिय अध्येताओं ! वैदिक साहित्य मुख्य रूप से भारतीयों की सांस्कृतिक जीवन शैली का परिचायक है, लेकिन मन्त्रों के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि वैदिक ऋषियों ने राष्ट्र की परिकल्पना और उसके विभिन्न तत्त्वों का भी स्पष्ट रूप से वर्णन किया था। वेदों में राजा, सभा, समिति, राजा के कर्त्तव्य और राष्ट्र की रक्षा से सम्बंधित जानकारी प्राप्त होती है। उदाहरण के लिए, 'ओम् आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायताम्', 'वयं राष्ट्रे जागृयाम पुरोहिताः', 'ततो नो अभयं कृधि' जैसी प्रार्थनाओं द्वारा ऋषियों ने वेदों में राष्ट्रीय चेतना को उजागर किया था और सभी मानवों के हृदय में एक सुखी और समृद्ध राष्ट्र की आकांक्षा जगाई थी।

मनुस्मृति ने यह स्पष्ट किया कि इसी देश में उत्पन्न हुए लोगों ने विभिन्न दिशाओं में जाकर सभ्यता का विस्तार किया - 'एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः...', इसके बाद, रामायण

और महाभारत में यह राष्ट्रीय भावना और अधिक प्रबल हुई, जहाँ देश की व्यापकता और अखंडता का गुणगान किया गया। पुराणों के लेखकों ने इस भावना को और अधिक सुदृढ़ किया। ब्रह्मपुराण ने भारत भूमि को तीनों लोकों में प्रसिद्ध तीर्थ कहा- 'जाम्बवे भारतं वर्षं तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम्', जबकि विष्णु पुराण में भारत देश की विशेषताओं का वर्णन करते हुए कहा गया कि भारत देश स्वर्ग से भी महान् है - 'गायन्ति देवाः किल गीतकानि'।[1]

इस इकाई में वैदिक वाङ्मय में राष्ट्रीयता की झलक दिखाने के उद्देश्य से अथर्ववेद और यजुर्वेद के कुछ अंश अर्थ और संक्षिप्त समीक्षा के साथ प्रस्तुत किए जा रहे हैं।

6.2 पृथिवी सूक्त (अथर्ववेदसंहिता 12/1/1-12)

अथर्ववेद के बारहवें काण्ड का प्रथम सूक्त पृथ्वी सूक्त है, जिसमें कुल 63 मन्त्र हैं। इसे पृथिवी सूक्त, भूमि सूक्त तथा मातृ सूक्त के नाम से भी जाना जाता है। ऋषि अथर्वा द्वारा रचित यह सूक्त, पृथ्वी के प्रति ऋषि की श्रद्धा और प्रकृति के प्रति संवेदना का दर्शन कराता है।

पृथ्वी का महिमामंडन:

इस सूक्त में ऋषि ने पृथ्वी के भौतिक और आध्यात्मिक दोनों रूपों का स्तवन किया है। वे पृथ्वी को माता के रूप में देखते हैं और उससे उत्तम वरदान की प्रार्थना करते हैं। ऋषि पृथ्वी की जीवनदायिनी शक्तियों, उसकी उर्वरता, और उसकी रक्षा करने की क्षमता का गुणगान करते हैं।

पृथ्वी और पर्यावरण:

पृथ्वी सूक्त में प्रकृति और पर्यावरण के संबंध में अद्वितीय ज्ञान निहित है। ऋषि पृथ्वी को जीव जगत् के लिए आवश्यक तत्त्वों का भंडार मानते हैं। वे पेड़-पौधों, वनस्पतियों और जीवों के बीच संबंधों का वर्णन करते हैं। ऋषि पृथ्वी की रक्षा करने और उसका सम्मान करने का संदेश देते हैं।

राष्ट्रीय भावना और वसुधैव कुटुम्बकम्:

यह सूक्त राष्ट्रीय अवधारणा और वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना को विकसित करता है। ऋषि पृथ्वी को सभी प्राणियों का घर मानते हैं और सभी के प्रति प्रेम और करुणा का भाव रखने का संदेश देते हैं। अथर्ववेद के अंश (12/1/1-12) में राष्ट्र-भूमि के प्रति ऋषियों की गौरवपूर्ण भावनाओं की मार्मिक अनुभूति का सुंदर चित्रण है । यहाँ पण्डित क्षेमकरणदास त्रिवेदी के अथर्ववेदभाष्य के अनुसार अथर्ववेद के मन्त्रों का शब्दार्थ और भावार्थ प्रस्तुत किया जा रहा है-

सत्यं बृहदृतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति।
सा नो भूतस्य भव्यस्य पत्न्युरुं लोकं पृथिवी नः कृणोतु ॥१॥

शब्दार्थ

(बृहत्) बढ़ा हुआ (सत्यम्) सत्य कर्म, (उग्रम्) उग्र (ऋतम्) सत्यज्ञान, (दीक्षा) दीक्षा [आत्मनिग्रह], (ब्रह्म) ब्रह्मचर्य [वेदाध्ययन, वीर्यनिग्रह रूप] (तपः) तप [व्रतधारण] और (यज्ञः)

[1] राष्ट्रीयता एवं भारतीय साहित्य, डॉ. शशि तिवारी, पृ. 70

यज्ञ [देवपूजा, सत्सङ्ग और दान] (पृथिवीम्) पृथिवी को (धारयन्ति) धारण करते हैं। (नः) हमारे (भूतस्य) बीते हुये और (भव्यस्य) होनेवाले [पदार्थ] की (पत्नी) पालन करनेवाली (सा पृथिवी) वह पृथिवी (उरुम्) चौड़ा (लोकम्) स्थान (नः) हमारे लिये (कृणोतु) करे ॥१॥

भावार्थ

सत्यकर्मी, सत्यज्ञानी, जितेन्द्रिय, ईश्वर और विद्वानों से प्रीति करनेवाले चतुर पुरुष पृथिवी पर उन्नति करते हैं। यह नियम भूत और भविष्यत् के लिये समान है ॥१॥[2]

असंबाधं बध्यतो मानवानां यस्या उद्वतः प्रवतः समं बहु।
नानावीर्या ओषधीर्या बिभर्ति पृथिवी नः प्रथतां राध्यतां नः ॥२॥

शब्दार्थ

(मानवानाम्) मानवालों वा मननशीलों के (असंबाधम्) गति रोकनेवाले व्यवहार को (बध्यतः) मिटाती हुई (यस्याः) जिस [पृथिवी] के [मध्य] (उद्वतः) ऊँचे और (प्रवतः) नीचे देश और (बहु) बहुत से (समम्) सम स्थान हैं। (या) जो (नानावीर्याः) अनेकवीर्य [बल]वाली (ओषधीः) ओषधियों [अन्न, सोमलता आदि] को (बिभर्ति) रखती है, (पृथिवी) वह पृथिवी (नः) हमारे लिये (प्रथताम्) चौड़ी होवे और (नः) हमारे लिये (राध्यताम्) सिद्धि करे ॥२॥

भावार्थ

विचारशील मनुष्य पृथिवी पर ऊँचे, नीचे और सम स्थानों में विघ्नों को मिटाकर अन्न आदि पदार्थ प्राप्त करके कार्यसिद्धि करते जाते हैं ॥२॥[3]

यस्यां समुद्र उत सिन्धुरापो यस्यान्नं कृष्टयः संबभूवुः।
यस्यामिदं जिन्वति प्राणदेजत्सा नो भूमिः पूर्वपेये दधातु ॥३॥

शब्दार्थ

(यस्याम्) जिस [भूमि] पर (समुद्रः) समुद्र (उत) और (सिन्धुः) नदी और (आपः) जलधाराएँ [झरने कूप आदि] हैं, (यस्याम्) जिस पर (अन्नम्) अन्न और (कृष्टयः) खेतियाँ (संबभूवुः) उत्पन्न हुई हैं। (यस्याम्) जिस पर (इदम्) यह (प्राणत्) श्वास लेता हुआ और (एजत्) चेष्टा करता हुआ [जगत्] (जिन्वति) चलता है, (सा भूमिः) वह भूमि (नः) हमें (पूर्वपेये) श्रेष्ठों से रक्षा योग्य पद पर (दधातु) ठहरावे ॥३॥

भावार्थ

जो मनुष्य समुद्र, नदी, कूप और वृष्टि के जल तथा अन्य खेती आदि से नौका, यान, कलायन्त्र आदि में अनेक प्रकार उपकार लेते हैं, वे सब जगत् को आनन्द देकर श्रेष्ठ पद पाते हैं ॥३॥[4]

यस्याश्चतस्रः प्रदिशः पृथिव्या यस्यामन्नं कृष्टयः संबभूवुः।
या बिभर्ति बहुधा प्राणदेजत्सा नो भूमिर्गोष्वप्यन्ने दधातु ॥४॥

[2] https://vedicscriptures.in/atharvaveda/12/1/0/1
[3] https://vedicscriptures.in/atharvaveda/12/1/0/2
[4] https://vedicscriptures.in/atharvaveda/12/1/0/3

शब्दार्थ

(यस्याः पृथिव्याः) जिस पृथिवी की (चतस्रः) चारों (प्रदिशः) बड़ी दिशाएँ हैं, (यस्याम्) जिस में (अन्नम्) अन्न और (कृष्टयः) खेतियाँ (संबभूवुः) उत्पन्न हुई हैं। (या) जो (बहुधा) अनेक प्रकार से (प्राणत्) श्वास लेते हुए और (एजत्) चेष्टा करते हुए [जगत्] को (बिभर्ति) पोषती है, (सा भूमिः) वह भूमि (नः) हमें (गोषु) गौओं में (अपि) और भी (अन्ने) अन्न में (दधातु) रक्खे ॥४॥

भावार्थ

जो मनुष्य सब ओर दृष्टि फैलाकर अन्न आदि पदार्थ प्राप्त करके सब प्राणियों की रक्षा करते हैं, वे इस भूमि पर गौ, बैल, अश्व आदि और अन्न आदि पदार्थों से परिपूर्ण रहते हैं ॥४॥[5]

यस्यां पूर्वे पूर्वजना विचक्रिरे यस्यां देवा असुरानभ्यवर्तयन्।
गवामश्वानां वयसश्च विष्ठा भगं वर्चः पृथिवी नो'दधातु ॥५॥

शब्दार्थ

(यस्याम्) जिस [पृथिवी] पर (पूर्वे) पूर्वकाल में (पूर्वजनाः) पूर्वजों ने (विचक्रिरे) बढ़कर कर्तव्य किये हैं, (यस्याम्) जिस पर (देवाः) देवताओं [विजयी जनों] ने (असुरान्) असुरों [दुष्टों] को (अभ्यवर्तयन्) हराया है। (गवाम्) गौओं, (अश्वानाम्) अश्वों (च) और (वयसः) अन्न की (विष्ठा) चौकी [ठिकाना], (पृथिवी) वह पृथिवी (नः) हम को (भगम्) ऐश्वर्य और (वर्चः) तेज (दधातु) देवे ॥५॥

भावार्थ

जिस प्रकार पूर्वजों ने विघ्नों को हटाकर कर्त्तव्य करके ऐश्वर्य पाया है, इसी प्रकार मनुष्य पुरुषार्थ करके ऐश्वर्यवान् और प्रतापवान् होवें ॥५॥[6]

विश्वंभरा वसुधानी प्रतिष्ठा हिरण्यवक्षा जगतो निवेशनी।
वैश्वानरं बिभ्रती भूमिरग्निमिन्द्रऋषभा द्रविणे नो दधातु ॥६॥

शब्दार्थ

(विश्वम्भरा) सब को सहारा देनेवाली, (वसुधानी) धनों की रखनेवाली (प्रतिष्ठा) दृढ़ आधार (हिरण्यवक्षाः) सुवर्ण छाती में रखनेवाली, (जगतः) चलनेवाले [उद्योगी] की (निवेशनी) सुख देनेवाली, (वैश्वानरम्) सब नरों के हितकारी (अग्निम्) अग्नि [समान प्रतापी मनुष्य] की (बिभ्रती) पोषण करनेवाली, (इन्द्रऋषभा) इन्द्र [परमात्मा वा मनुष्य वा सूर्य] को प्रधान माननेवाली (भूमिः) भूमि (द्रविणे) बल [वा धन] के बीच (नः) हम को (दधातु) रक्खे ॥६॥

भावार्थ

जो मनुष्य उद्योग करते हैं, वे भूपति होकर इस वसुधा पृथिवी पर सोना-चाँदी आदि की प्राप्ति से बली और धनी होकर सुख पाते हैं ॥६॥[7]

[5] https://vedicscriptures.in/atharvaveda/12/1/0/4
[6] https://vedicscriptures.in/atharvaveda/12/1/0/5
[7] https://vedicscriptures.in/atharvaveda/12/1/0/6

यां रक्षन्त्यस्वप्ना विश्वदानीं देवा भूमिं पृथिवीमप्रमादम्।
सा नो मधु प्रियं दुहामथो उक्षतु वर्चसा ॥७॥

शब्दार्थ

(याम्) जिस (विश्वदानीम्) सब कुछ देनेवाली (भूमिम्) भूमि [आश्रय स्थान], (पृथिवीम्) पृथिवी [फैले हुए धरातल] को (अस्वप्नाः) बिना सोते हुए (देवाः) देवता [विजयी पुरुष] (अप्रमादम्) बिना चूक (रक्षन्ति) बचाते हैं। (सा) वह (नः) हमको (प्रियम्) प्रिय (मधु) मधु [मधुविद्या, पूर्ण विज्ञान] (दुहाम्) दुहा करे, (अथो) और भी (वर्चसा) तेज [बल पराक्रम] के साथ (उक्षतु) बढ़ावे ॥७॥

भावार्थ

जो मनुष्य निरालसी और अप्रमादी होकर भूमि की रक्षा करते हैं, वे इस पृथिवी पर विज्ञानी और तेजस्वी होते हैं ॥७॥[8]

यार्णवेऽधि सलिलमग्र आसीद्यां मायाभिरन्वचरन्मनीषिणः।
यस्या हृदयं परमे व्योमन्त्सत्येनावृतममृतं पृथिव्याः।
सा नो भूमिस्त्विषिं बलं राष्ट्रे दधातूत्तमे ॥८॥

शब्दार्थ

(या) जो [भूमि] (अर्णवे अधि) जल से भरे समुद्र के ऊपर (सलिलम्) जल [भाप] (अग्रे) पहिले (आसीत्) थी, (मनीषिणः) मननशील लोग (मायाभिः) अपनी बुद्धियों से (यान् अन्वचरन्) जिस [भूमि] के पीछे-पीछे चले हैं [सेवा करते रहे हैं]। (यस्याः पृथिव्याः) जिस पृथिवी का (हृदयम्) हृदय [भीतरी बल] (परमे) बहुत बड़े (व्योमन्) विविध रक्षक [आकाश] में (सत्येन) सत्य [अविनाशी परमात्मा] से (आवृतम्) ढका हुआ (अमृतम्) बिना मरा [सदा उपजाऊ] है। (सा भूमिः) वह भूमि (नः) हम को (त्विषिम्) तेज और (बलम्) बल वा सेना (उत्तमे) सब से श्रेष्ठ (राष्ट्रे) राज्य के बीच (दधातु) दान करे ॥८॥

भावार्थ

सृष्टि के आदि में जल के मध्य यह पृथिवी बुदबुदे के समान थी, वह आकाश में ईश्वरनियम से दृढ़ होकर अनेक रत्नों की खानि है। पहिले विचारवानों के समान सब मनुष्य पराक्रम से पृथिवी की सेवा करके बड़े राज्य के भीतर तेजस्वी और बली होकर बढ़ती करें ॥८॥[9]

यस्या॒माप॑ः परि॒चरा॑ः स॑मा॒नीर॑होरा॒त्रे अप्र॑मादं॒ क्षर॑न्ति।
सा नो॒ भूमि॒र्भूरि॑धारा॒ पयो॑ दुहा॒मथो॑ उक्षतु॒ वर्च॑सा ॥९॥

शब्दार्थ

(यस्याम्) जिस भूमि पर (परिचराः) सेवाशीलवाले (समानीः) एक से स्वभाववाली (आपः) आप्त प्रजाएँ [सत्यवक्ता लोग] (अहोरात्रे) दिन-राति (अप्रमादम्) बिना चूक (क्षरन्ति) बहते हैं। (भूरिधारा) अनेक धारण शक्तियोंवाली (सा भूमिः) वह भूमि (नः) हमको (पयः) अन्न (दुहाम्)

[8] https://vedicscriptures.in/atharvaveda/12/1/0/7
[9] https://vedicscriptures.in/atharvaveda/12/1/0/8

दुहा करे, (अथो) और भी (वर्चसा) तेज के साथ (उक्षतु) बढ़ावे ॥९॥

भावार्थ

मनुष्यों को योग्य है कि समदर्शी परोपकारी महात्माओं के समान दृढ़चित्त होकर परस्पर सेवा करते हुए पृथिवी पर अन्न आदि के लाभ से बल वीर्य बढ़ावें ॥९॥[10]

यामश्विनावमिमातां विष्णुर्यस्यां विचक्रमे।
इन्द्रो यां चक्र आत्मनेऽनमित्रां शचीपतिः।
सा नो भूमिर्वि सृजतां माता पुत्राय मे पयः ॥१०॥

शब्दार्थ

(याम्) जिस [भूमि] को (अश्विनौ) दिन और राति ने (अमिमाताम्) नापा है, (यस्याम्) जिस [भूमि] पर (विष्णुः) व्यापक सूर्य ने (विचक्रमे) पाँव रक्खा है। (याम्) जिस [भूमि] को (शचीपतिः) वाणियों, कर्मों और बुद्धियों में चतुर (इन्द्रः) इन्द्र [बड़े ऐश्वर्यवाले पुरुष] ने (आत्मने) अपने लिये (अनमित्राम्) शत्रुरहित (चक्रे) किया है। (सा भूमिः) वह भूमिः (नः) हमारे [हम सब के] हित के लिये (मे) मुझ को (पयः) अन्न [वा दूध] (वि) विविध प्रकार (सृजताम्) देवे, [जैसे] (माता) माता (पुत्राय) पुत्रको [अन्न वा दूध देती है] ॥१०॥

भावार्थ

जिस पृथिवी को दिन और राति अपने गुणों से उपजाऊ बनाते हैं, जिस को सूर्य अपने आकर्षण, प्रकाश और वृष्टि आदि कर्म से स्थिर रखता है, और जिस पर यथार्थवक्ता, यथार्थकर्मा और यथार्थज्ञाता पुरुष विजय पाते हैं, उस पृथिवी को उपयोगी बनाकर प्रत्येक मनुष्य सब का हित करे ॥१०॥[11]

गिरयस्ते पर्वता हिमवन्तोऽरण्यं ते पृथिवि स्योनमस्तु।
बभ्रुं कृष्णां रोहिणीं विश्वरूपां ध्रुवां भूमिं पृथिवीमिन्द्रगुप्ताम्।
अजीतोऽहतो अक्षतोऽध्यष्ठां पृथिवीमहम् ॥११॥

शब्दार्थ

(पृथिवी) हे पृथिवि ! [हमारे लिये] (ते) तेरी (गिरयः) पहाड़ियाँ और (हिमवन्तः) हिमवाले (पर्वताः) पहाड़, और (ते) तेरा (अरण्यम्) वन भी (स्योनम्) मनभावना (अस्तु) होवे। (बभ्रुम्) पोषण करनेवाली, (कृष्णाम्) जोतने योग्य, (रोहिणीम्) उपजाऊ, (विश्वरूपाम्) अनेक [सुनैले, रुपैले आदि] रूपवाली, (ध्रुवाम्) दृढ़ स्वभाववाली, (भूमिम्) आश्रय स्थान, (पृथिवीम्) फैली हुई, (इन्द्रगुप्ताम्) इन्द्रों [ऐश्वर्यशाली वीर पुरुषों] से रक्षा कियी गई (पृथिवीम्) पृथिवी का (अजीतः) बिना जीर्ण हुए, (अहतः) बिना मारे गये और (अक्षतः) बिना घायल हुए (अहम्) मैं (अधि अस्थाम्) अधिष्ठाता बना हूँ ॥११॥

[10] https://vedicscriptures.in/atharvaveda/12/1/0/9

[11] https://vedicscriptures.in/atharvaveda/12/1/0/10

भावार्थ

मनुष्य कला, यन्त्र, यान, विमान आदि से दुर्गम्य स्थानों में निर्विघ्न पहुँचकर पृथिवी को उपजाऊ बनावें ॥११॥[12]

यत्ते मध्यं पृथिवि यच्च नभ्यं यास्त ऊर्जस्तन्वः संबभूवुः।
तासु नो धेह्यभि नः पवस्व माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः॥
पर्जन्यः पिता स उ नः पिपर्तु ॥१२॥

शब्दार्थ

(पृथिवी) हे पृथिवी ! (यत्) जो (ते) तेरा (मध्यम्) न्याययुक्त कर्म है, (च) और (यत्) जो (नभ्यम्) क्षत्रियों का हितकारी कर्म है, और (याः) जो (ऊर्जः) बलदायक [अन्न आदि] पदार्थ (ते) तेरे (तन्वः) शरीर से (संबभूवुः) उत्पन्न हुए हैं। (तासु) उन सब [क्रियाओं] के भीतर (नः) हम को (धेहि) तू रख, और (नः) हमें (अभि) सब ओर से (पवस्व) शुद्ध कर, (भूमिः) भूमि (माता) [मेरी] माता [तुल्य है], (अहम्) मैं (पृथिव्याः) पृथिवी का (पुत्रः) पुत्र [नरक, महाकष्ट से बचानेवाला हूँ]। (पर्जन्यः) सींचनेवाला मेघ (पिता) [मेरे] पिता [तुल्य पालक है], (सः) वह (उ) भी (नः) हमें (पिपर्तु) पूर्ण करे ॥१२॥

भावार्थ

मनुष्य नीतिविद्या, भूगर्भविद्या, भूतलविद्या और मेघविद्या आदि में निपुण होकर पृथिवी को उपकारी और सुखदायक बनावें ॥१२॥[13]

समीक्षा

अथर्ववेद के इस सूक्त में पृथ्वी के चर-अचर जीवों के प्रति ऋषि की गहरी चिंतनशीलता प्रकट होती है। पृथ्वी सूक्त में प्रकृति और पर्यावरण के बारे में अद्वितीय ज्ञान समाहित है। इन मंत्रों में पर्यावरण, जीव जगत् और प्रकृति के विभिन्न तत्त्वों के बीच के संबंधों को जो वैज्ञानिक दृष्टिकोण से देखा गया है, वह आज के समय में भी अत्यंत प्रासंगिक प्रतीत होता है।

पृथ्वी सूक्त राष्ट्रीय अवधारणा तथा वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना को विकसित, पोषित और फलित करने के लिए अत्यंत उपयोगी है। इन मंत्रों के माध्यम से ऋषि ने पृथ्वी के भौतिक और दैवीय दोनों रूपों का स्तवन किया है। यहाँ सम्पूर्ण पृथ्वी को माता के रूप में देखा गया है, और माता की इस महिमा को समझकर उससे उत्तम वरदान की प्रार्थना की गई है। यह सूक्त अथर्ववेद में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है, इसमें पृथ्वी के स्वरूप और उसकी उपयोगिता, मातृभूमि के प्रति गहरी भक्ति का विस्तार से वर्णन किया गया है। इस सूक्त के मंत्रद्रष्टा ऋषि अथर्वा हैं। (गोपथ ब्राह्मण के अनुसार अथर्वन् का अर्थ गतिहीन या स्थिर है।)

"पृथ्वी हमारी माता है और हम इसके पुत्र हैं" (माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः)। भूमि के प्रति हर कदम पर कृतज्ञता व्यक्त की गई है। पृथ्वी सूक्त में कहा गया है:

देवता जिस भूमि की रक्षा और उपासना करते हैं, वह मातृभूमि हमें मधुर सम्पन्न करे। इस पृथ्वी का हृदय परम आकाश के अमृत से जुड़ा रहता है। वह भूमि हमारे राष्ट्र में तेज और बल को

[12] https://vedicscriptures.in/atharvaveda/12/1/0/11
[13] https://vedicscriptures.in/atharvaveda/12/1/0/12

बढ़ाए।

सूर्य और चन्द्रमा से इस पृथ्वी का मानो मापन हो रहा है। यहाँ मापन का अर्थ है कि पूर्व से पश्चिम की ओर जाते हुए सूर्य और चन्द्रमा मानो पृथ्वी को माप रहे हैं। इन सूर्य-चन्द्रमा द्वारा सर्वव्यापक प्रभु पृथ्वी पर विभिन्न वनस्पतियों को जन्म दे रहे हैं। यह पृथ्वी शक्ति और ज्ञान के स्वामी जितेन्द्रिय पुरुष की मित्र है। यह भूमि हमें आवश्यक पोषण सामग्री जैसे दुग्ध आदि प्रदान करे।

पृथ्वी सूक्त के 12.1.7 और 8 श्लोक कहते हैं:

"हे पृथ्वी माता, आपके हिमाच्छादित पर्वत और वन शत्रु रहित हों। आपके शरीर के पोषक तत्त्व हमें प्रतिष्ठा दें। यह पृथ्वी हमारी माता है और हम इसके पुत्र हैं।

"हे माता! सूर्य की किरणें हमारे लिए वाणी लाएं। आप हमें मधुर रस दें, आप दो पैरों, चार पैरों वाले सहित सभी प्राणियों का पोषण करती हैं।"

यहाँ पृथ्वी के सभी गुणों का वर्णन है लेकिन इसके साथ ही अपनी ओर से क्षमायाचना भी की गई है:

"हे माता, हम जब दाएं-बाएं पैर से चलते हैं, बैठते हैं या खड़े होते हैं तो आप दुखी न हों। सोते हुए, दाएं-बाएं करवट लेते हुए, आपकी ओर पैर पसारते हुए शयन करते हैं- आप दुखी न हों। जब हम औषधि, बीज बोने या निकालने के लिए आपको खोदते हैं तो आपका परिवार, घास-फूस, वनस्पति फिर से तीव्र गति से उगे-बढ़े। आपके मर्म को चोट न पहुंचे।"[14]

बोध प्रश्न - 1

1. अथर्ववेद के बारहवें काण्ड का प्रथम सूक्त किस नाम से प्रसिद्ध है ?
2. अथर्ववेद के पृथ्वीसूक्त में पृथ्वी को किस रूप में देखा गया है ?
3. पृथ्वीसूक्त के मंत्रद्रष्टा ऋषि कौन हैं ?

अभ्यास प्रश्न - 1

1. "पृथ्वी हमारी माता है और हम इसके पुत्र हैं" पृथ्वीसूक्त के इस भाव को अपने शब्दों में लिखें।

   ……..

   ……..

   ……..

14

https://hi.wikipedia.org/wiki/%E0%A4%AA%E0%A5%83%E0%A4%A5%E0%A5%8D%E0%A4%B5%E0%A5%80_%E0%A4%B8%E0%A5%82%E0%A4%95%E0%A5%8D%E0%A4%A4#:~:text=%E0%A4%85%E0%A4%A5%E0%A4%B0%E0%A5%8D%E0%A4%B5%E0%A4%B5%E0%A5%87%E0%A4%A6%20%E0%A4%95%E0%A5%87%20%E0%A4%AC%E0%A4%BE%E0%A4%B0%E0%A4%B9%E0%A4%B5%E0%A5%87%E0%A4%82%20%E0%A4%95%E0%A4%BE%E0%A4%A3%E0%A5%8D%E0%A4%A1%20%E0%A4%95%E0%A4%BE,%E0%A4%B8%E0%A4%AE%E0%A5%8D%E0%A4%AC%E0%A4%82%E0%A4%A7%20%E0%A4%AE%E0%A5%87%E0%A4%82%20%E0%A4%85%E0%A4%A6%E0%A5%8D%E0%A4%B5%E0%A4%BF%E0%A4%A4%E0%A5%80%E0%A4%AF%20%E0%A4%9C%E0%A5%8D%E0%A4%9E%E0%A4%BE%E0%A4%A8%20%E0%A4%B9%E0%A5%88%E0%A5%A4

6.3 वैदिक राष्ट्र के तत्त्व (शुक्ल यजुर्वेद 22/22)

प्रिय अध्येताओं ! हम सभी जानते हैं कि वेद, भारतीय साहित्य के प्राचीनतम ग्रंथ हैं, जिनमें मंत्रों का विशाल संग्रह है। इन मंत्र-संहिताओं में भारतीय विचारधारा, दर्शन और संस्कृति का मूल स्वरूप निहित है। राष्ट्र और राष्ट्रप्रेम से संबंधित विचारों की शुरुआत भी यहीं से हुई है। इकाई के इस भाग में हम यजुर्वेद के उस अंश को देखेंगे जिसमें वैदिक राष्ट्र के तत्त्व और राष्ट्र के प्रति कल्याण भावना की एक सुंदर अभिव्यक्ति प्रस्तुत की गई है। वेदों में राष्ट्र और राष्ट्रप्रेम से संबंधित विचारों का उल्लेख दर्शाता है कि भारतीय संस्कृति में सदैव से ही राष्ट्र के प्रति गहन भावना रही है। वेदों के ये मंत्र हमें राष्ट्र के प्रति कर्त्तव्यों और दायित्त्वों का बोध कराते हैं।

आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामा राष्ट्रे राजन्यः शूरऽइषव्योऽतिव्याधी महारथो जायतां दोग्ध्री धेनुर्वोढानड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायतां निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो नऽओषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम् ।। (यजु० २२/२२)

शब्दार्थ

हे (ब्रह्मन्) = महाशक्तिवाले ब्रह्मन् परमात्मन् ! हमारे (राष्ट्रे) = देश में (ब्रह्मवर्चसी) = वेद और परमेश्वर का ज्ञाता तेजस्वी सच्चा (ब्राह्मणः) = ब्राह्मण (आजायताम्) = सब ओर हो, (शूरः) = शूरवीर (इषव्यः) = बाणविद्या में चतुर (अतिव्याधी) = दुष्टों को अति वेग से दबा देनेवाला (महारथः) = महारथी (राजन्यः) = राजपुत्र क्षत्रिय वर्ग (आजायताम्) = हो। (दोग्ध्री धेनुः) = बहुत दुग्ध देनेवाली गौएँ (अनड्वान् वोढा) = बैल भार उठानेवाले (आशुः सप्तिः) = शीघ्र चलनेवाले घोड़े आदि हों। (योषा पुरन्धिः) = स्त्री पति पुत्रवाली हो। (अस्य यजमानस्य) = इस यजमान के राष्ट्र में (सभेयः युवा) = सभा में उत्तम वक्ता जवान और (जिष्णू) = जयशील (रथेष्ठाः) = रथ पर स्थित (वीरः) = वीर पुरुष (जायताम्) = होवे। (निकामे निकामे) = अपेक्षित समय पर (नः) = हमारे देश में (पर्जन्यः वर्षतु) = मेघ बरसे (नः ओषधयः) = हमारे अन्न आदि (फलवत्यः पच्यन्ताम्) = फलवाले होकर पकें तथा (नः योगक्षेमः) = जो धन आदि पहले हमें अप्राप्त हैं वह प्राप्त हों और जो प्राप्त हैं उनका संरक्षण (कल्पताम्) = भली प्रकार सिद्ध हो।[15]

भावार्थ

हे परमात्मन् ! मेरे राष्ट्र में ब्राह्मण ब्रह्म तेज को धारण करने वाले हों, क्षत्रिय वीर, रोग रहित तथा धनुर्विद्या में निपुण हों, गायें अधिक दूध देने वाली हों तथा बैल भारी-से- भारी बोझ ढोने में समर्थ हों, घोड़े गतिमान हों, नारियां पतिव्रता हों, यजमान युवक सभ्य, विजयी तथा रथवाहन युक्त हों, बादल समय पर पूर्ण वर्षा करें, औषधियां फल धारण करने वाली हों तथा सभी प्रकार से हमारा योगक्षेम हो।

समीक्षा

इस मन्त्र में एक आदर्श राष्ट्र का वर्णन है। हमारा राष्ट्र कैसा हो ? इस प्रश्न के उत्तर में कहते हैं-

*हे महतो महान् परमेश्वर !

[15] https://vedicscriptures.in/yajurveda/22/22

1) हमारे राष्ट्र में ब्राह्मण ब्रह्मतेज से युक्त हों, वे ज्ञान-दीप्ति से दीप्त हों। ब्राह्मण कौन है? ब्राह्मण के घर में उत्पन्न होने वाले को ब्राह्मण नहीं कह सकते। ब्राह्मण बनता है साधना से। ब्राह्मण नाम है उन ऋषियों, मुनियों और मेधावियों का जो राष्ट्र को सन्मार्ग दिखाते हैं। सच्चे ब्राह्मण ही 'अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि' कर सकते हैं।

2) क्षत्रीय शूरवीर, शस्त्रास्त्र चलाने में निपुण, शत्रुओं को उद्विग्न करने वाले और महारथी हों। आन्तरिक और बाह्य शत्रुओं से युद्ध करने के लिए तथा देश की रक्षा के लिए राष्ट्र में क्षत्रिय वीर हों।

3) प्रभूत दूध देने वाली गौएँ हों। देश के नागरिकों को स्वस्थ हृष्ट-पुष्ट और बलिष्ठ बनाने के लिए राष्ट्र में गौएँ होनी चाहिएँ। जो राष्ट्र गो-दुग्ध और गो-दुग्ध से बने पदार्थों का सेवन करते हैं वे प्रत्येक क्षेत्र में उन्नति करते हैं।

4) बैल भार उठाने वाले हों।

5) घोड़े शीघ्रगामी हों।

6) स्त्रियाँ नगर की रक्षिका हों।

7) इस यज्ञशील राष्ट्र का युवक सभा-सञ्चालन में कुशल, विजयशील, वीर और महारथी हो। भारतमाता के नौनिहालों को, युवक और युवतियों को इन उपदेशों को हृदयंगम कर लेना चाहिए। राष्ट्र-रक्षा का उत्तरदायित्व देश के युवक और युवतियों पर ही निर्भर है।

8) हमारी इच्छानुसार वृष्टि हो।

9) औषधियाँ हमारे लिए फलवती होकर पकें।

10) हमारा योग-क्षेम सिद्ध हो। अप्राप्त की प्राप्ति का नाम है 'योग' और प्राप्त वस्तु के रक्षण को 'क्षेम' कहते हैं। भाव यह है कि राष्ट्र की आवश्यकताएँ सुगमता से पूर्ण होती रहें।

आदर्श राष्ट्र के लिए यहाँ दस बातें कही गई हैं। सारे संसार के साहित्य को देख जाइए। आदर्श राष्ट्र की इससे सुन्दर,भव्य, और श्रेष्ठ कल्पना हो ही नहीं सकती ।[16]

बोध प्रश्न - 2

1. अप्राप्त की प्राप्ति को क्या कहते हैं ?
2. प्राप्त वस्तु के रक्षण को क्या कहते हैं ?

अभ्यास प्रश्न - 2

1. यजुर्वेद के अनुसार एक आदर्श राष्ट्र की क्या विशेषताएँ हैं ?

……

……

……

……

……

[16] https://bipinsavaliya.blogspot.com/2016/08/blog-post_54.html

6.4 राजा और प्रजा के कर्त्तव्य (अथर्ववेद 11/9/17-18)

अथर्ववेद के 11 वें काण्ड के 9 वें सूक्त में मन्त्र संख्या 17-18 में राजा और प्रजा के कर्त्तव्यों का उपदेश दिया गया है। वैदिक काल में राजा और प्रजा के बीच संबंध कर्त्तव्यों और दायित्त्वों पर आधारित था। राजा का कर्त्तव्य था कि वह प्रजा की रक्षा, न्याय, कल्याण और धर्म का पालन करे। प्रजा का कर्त्तव्य था कि वह राजा की आज्ञाओं का पालन करे, कर दे, सहयोग करे, सम्मान करे, धर्म का पालन करे और सत्य का मार्ग अपनाए।

यह संबंध पारस्परिक सम्मान और विश्वास पर आधारित था। राजा प्रजा का रक्षक और मार्गदर्शक था, और प्रजा राजा का आधार और शक्ति थी।

ये मन्त्र और उनका अर्थ इस प्रकार है -

चतुर्दंष्ट्राञ्छ्यावदंतः कुम्भमुष्काँ असृङ्मुखान्। स्वभ्यसा ये चोद्भ्यसाः ॥१७॥

शब्दार्थ

(चतुर्दंष्ट्रान्) चार डाढ़ोंवालों [बड़े हाथियों] और (श्यावदतः) काले दातोंवाले, (कुम्भमुष्कान्) कुम्भसमान [घड़ा समान बड़े] अण्डकोशवाले (असृङ्मुखान्) रुधिरमुखों [सिंह आदि जीवों] को (च) और (ये) जो (स्वभ्यसाः) स्वभाव से भयानक [और जो] (उद्भ्यसाः) ऊपरी [आकार से] भयानक हैं [उनको, कँपा दे म० १८] ॥१७॥

भावार्थ

इस मन्त्र में (उत् वेपय) [कँपा दे] क्रिया पद-मन्त्र १८ से आता है। राजा भयानक हिंसक जीवों और उनके समान दुष्ट मनुष्यों को राज्य से हटाकर प्रजापालन करें ॥१७॥[17]

उद्वेपय त्वमर्बुदेऽमित्राणाममूः सिचः।
जयांश्च जिष्णुश्चामित्राँ जयतामिन्द्रमेदिनौ ॥१८॥

शब्दार्थ

(अर्बुदे) हे अर्बुदि ! [शूर सेनापति राजन्] (त्वम्) तू (अमित्राणाम्) शत्रुओं की (अमूः) उन (सिचः) सेचनशील [उमड़ती हुई सेनाओं] को (उत् वेपय) कँपा दे। (जयन्) जीतता हुआ [प्रजागण] (च च) और (जिष्णुः) विजयी [राजा], (इन्द्रमेदिनौ) जीवों के स्नेही आप दोनों (अमित्रान्) वैरियों को (जयताम्) जीतें ॥१८॥

भावार्थ

परस्पर प्रसन्नचित् प्रजागण और राजगण शत्रुओं की सहायक सेनाओं को तुरन्त जीत लेवें ॥१८॥[18]

[17] https://vedicscriptures.in/atharvaveda/11/9/0/17

[18] https://vedicscriptures.in/atharvaveda/11/9/0/18

बोध प्रश्न - 3

1. वैदिक काल में राजा और प्रजा के बीच का संबंध किस पर आधारित था?

   ……..

   ……..

   ……..

   ……..

   ……..

2. अथर्ववेद के 11 वें काण्ड के 9 वें सूक्त में मन्त्र संख्या 17-18 में किसका उपदेश दिया गया है ?

   ……..

   ……..

   ……..

   ……..

   ……..

6.5 सारांश

इन वैदिक ग्रंथों के आधार पर प्राचीन भारत में राष्ट्र, राजा और प्रजा के सम्बंध को समझा जा सकता है। अथर्ववेद के 12 वें सूक्त में पृथ्वी के महत्त्व को दर्शाया है। सम्भवतः पृथ्वी ही राष्ट्र का आधार मानी जाती थी। शुक्ल यजुर्वेद में राष्ट्र के स्वरूप पर चर्चा की गई है। अथर्ववेद में राजा और प्रजा के कर्त्तव्यों का वर्णन मिलता है। राजा राष्ट्र की रक्षा और समृद्धि के लिए उत्तरदायी माना जाता था, जबकि प्रजा का कर्त्तव्य राजा का समर्थन करना और राष्ट्र के हित में कार्य करना होता था।

इन अंशों से यह पता चलता है कि प्राचीन भारत में राष्ट्र को सर्वोपरि माना जाता था। पृथ्वी राष्ट्र का आधार मानी जाती थी।

6.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- अथर्ववेद का सुबोध भाष्य, श्रीपाद दामोदर सातवलेकर, पारडी।
- यजुर्वेद का सुबोध भाष्य, श्रीपाद दामोदर सातवलेकर, पारडी।
- माताभूमि, डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल, चेतना प्रकाशन, हैदराबाद, 1953
- वैदिक राजनीति शास्त्र, डॉ. विश्वनाथ प्रसाद वर्मा, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना, 1975

6.7 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न - 1 के उत्तर

1. पृथ्वी सूक्त
2. माता के रूप में
3. अथर्वा

अभ्यास प्रश्न - 1 का उत्तर

1. इस प्रश्न का उत्तर अध्येता स्वयं लिखें।

बोध प्रश्न - 2 के उत्तर

1. योग
2. क्षेम

अभ्यास प्रश्न - 2 का उत्तर

1. इस प्रश्न का उत्तर अध्येता स्वयं लिखें।

बोध प्रश्न - 3 के उत्तर

1. कर्त्तव्यों और दायित्त्वों पर आधारित
2. राजा और प्रजा के कर्त्तव्यों का

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY